कई पाठशालाओं विद्यालयों, हाई स्कूलों
और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत।

वल्लभ-वाणी

[जैनाचार्य श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वर जी
महाराज साहब के उपदेश—रत्न]

संग्राहक, सम्पादक और प्रकाशक।—
राजवैद्य चन्द्रगुप्त भारतीय, पिपलौदा C I

वीर जयन्ति	न्यौछावर	प्रथमावृत्ति
२००६ वि०	दस आने	२०००

आभार

सादड़ी (मारवाड़) निवासी श्रीमान् सेठ चन्दनमल जी कस्तूरचन्द जी ने अज्ञान तिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु पञ्जाब केसरी, पूज्यपाद आचार्य देव १०८ श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज साहब के जन्म दिवस के उपलक्ष में पन्यास पद विभूषित पण्डित मुनि श्री समुद्र विजय जी महाराज साहब के सदुपदेश से २५०) रुपये इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए प्रदान किये अतः हम आपके हृदयसे आभारी हैं। साथ ही प्रकाशन के पूर्व ग्राहक बनने वाले महानुभावों को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते।

१०० श्रीमान् सेठ अगरचंद जी भैरूँदान जी सेठिया, बीकानेर
१०० ,, ,, प्रसन्नचंद जी कोचर, बीकानेर
१०० ,, ,, रामरतन जी कोचर, बीकानेर
१०० ,, ,, हीराचंद जी सुखराज जी, नया बाजार बड़ौदा
५० ,, ,, लालचंद जी कृष्णा जी, सादड़ी (मारवाड़)
५ ,, ,, लक्ष्मीचन्द जी कोचर, बीकानेर

—प्रकाशक

अपनी बात

मैं सौभाग्यशाली हूँ कि मुझे प्रसिद्ध वक्ता, परम प्रभावक, श्रीमज्जैनाचार्य विजय वल्लभ सूरीश्वर जी महाराज साहब के व्याख्यानों को लिखने का अवसर मिला।

---गुरुदेव के अगाधज्ञान-रत्नाकर में से जो रत्न उपलब्ध किये जा सके हैं—उनको इस छोटी सी पुस्तक में अङ्कित करने का मैंने दुःसाहस किया है।

अल्पज्ञता के कारण, सम्भव है मैं गुरुदेव के आशय को समझ न सका होऊँ और कोई त्रुटि रह गई हो तो उसका दायित्व मुझ पर है। वह मेरा ही दोष है, और जो कुछ सौंदर्य इस पुस्तक में दिखलाई दे वह सब गुरुदेव के ज्ञान पुष्प का परिमल है।

मैं प्रन्यास पद विभूषित पण्डित रत्न मुनि श्री समुद्र विजय जी महाराज और विद्या रसिक, विचक्षण मुनि श्री जनक विजय जी महाराज का अत्यन्त आभारी हूं जिनकी प्रेरणा और अनुकम्पा ने मुझे यह 'वल्लभ-वाणी' आप तक पहुँचाने में समर्थ बनाया।

यदि इस पुस्तिका से जनता का यत् किंचित हित साधन हो सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

शान्ति-भवन
पिरलौदा C I

विनीत—
चन्द्रगुप्त भारतीय

आशीर्वचन

इसके संग्राहक और सम्पादक महोदय, वैद्य विशारद राजवैद्य पण्डित चन्द्रगुप्त जी भारतीय न्यायतीर्थ, शास्त्री, साहित्य रत्न ने श्रद्धा एवं भक्ति से जगत्प्रसिद्ध, सर्वशास्त्र निष्णात, न्यायाम्भो निधि, जैनाचार्य १००८ श्रीमद्विजयानन्द सूरीश्वरजी (आत्माराम जी) महाराज के पट्टधर, अज्ञान-तिमिर तरणि, कलिकाल कल्पतरु, पंजाब केसरी, परमगुरुदेव आचार्य १००८ श्रीमद्विजयवल्लभ सूरीश्वरजी महाराज के इस वर्ष के चातुर्मास के व्याख्यान संग्रह किये, उनमें से वचनरूप "अनमोल रत्न" चुन चुन कर उनकी माला बना कर के आपके कण्ठ को सुशोभित कर रहे हैं।

आशा है कि आप सदैव इसको अपने कण्ठ में धारण कर अपनी आत्मा का कल्याण करके भारतीयजी के परिश्रम को सफल बनायेंगे।

बीकानेर २६-१०-४८	श्री परमगुरुदेव का चरण किंकर समुद्र विजय

वल्लभ - वाणी

आत्मा और धर्म

[१]

मैं आप लोगों से पूछता हूँ—"आपका धर्म क्या है?"

क्या जैन, वैष्णव, बौद्ध, ईसाई, इस्लाम आदि आपके धर्म हैं? नहीं। ये आपके धर्म नहीं। आपका धर्म वही है जो आत्मा को पतन से उठावे। (१)

[२]

भगवान ने स्वयं इन्द्र के सहयोग को अस्वीकार करके आपको स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाया है। (२)

[३]

आत्मा दिव्य स्वरूप है। उस पर पर्दा आया हुआ है। उस पर्दे के हट जाने पर स्वयं ही प्रकाश हो जाता है। (३)

[४]

शुद्धात्मा ही सच्चिदानन्द ब्रह्म है। (४)

[५]

महात्माओं का जीवन परोपकारमय होता है। इन्होंने संसार के कल्याण के लिये अपनी जान को जोखिम में डालना अपना कर्तव्य समझा है। (५)

[महात्मा गांधी का बलिदान इसका ज्वलन्त उदाहरण है। सम्पादक।]

[६]

मिथ्यादृष्टि धर्म के काम में बाधा पहुँचाता है और सम्यग्दृष्टि धर्म के काम में मदद देता है। (६)

[७]

जो जीव समझदार होता है, उसे थोड़े संकेत से ही लाभ हो जाता है। (७)

[८]

आत्मा की एक सरीखी दशा रहना ही सुख है। इस सुख का अन्त नहीं। (८)

[९]

मैं पूछता हूँ आप श्वासोच्छ्वास में क्या गुण मानते हैं? क्या उसमें कोई संगीत सुनते हैं? क्या उसमें कोई नाटक देखने को मिलता है? कोई गंध आती है? रस

चखने को मिलता है या सुगन्ध स्पर्श का अनुभव होता है ? इसमें क्या सुख है ?

श्यामोन्ध धाम में जो विलक्षण सुख है वह वाणी द्वारा कहा नहीं जा सकता। इस जगती में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिससे इसके सुख की तुलना की जा सके।

सुख की उपमा जग में नहीं।
केवल ज्ञानी मनें न कहीं ॥ (६)

[१०]

एकत्व भावना से स्वावलम्बन का पाठ सीखा जाता है। किसी के भरोसे रहने की जरूरत नहीं। अपना काम स्वय करना होगा। (१०)

[११]

सर्व जीव अपने आत्म बल से जो चाहे वह शक्ति पैदा कर सकते हैं। दूसरे के भरोसे रहना योग्य नहीं। (११)

[१२]

धर्म के हलके में रहने से कोइ बाल भी बाका नहीं कर सकता। (१२)

[१३]

आत्मा नित्य है। इसलिये आत्मा से ही आत्मा का प्रेम होना चाहिये। (१३)

[१४]

आत्मा ही ध्यान, ध्याता और ध्येय है। ये जुदा जुदा होकर एक हो जायगे— तो आत्म स्वरूप की प्राप्ति होगी। इस त्रिपुटी का एक होना ही आत्म कल्याण है। (१४)

[१५]

जब आत्मा वीतराग देव की शरण लेता है— तब सब प्रकार के कष्टों से छूट जाता है। (१५)

[१६]

पराई निन्दा छोड़ो, इसी में आत्म कल्याण है। (१६)

[१७]

पैसे वालों का पैसा तो खर्च होगा। यदि पैसे वाला धर्मात्मा हुआ तो धर्म में और पापात्मा हुआ तो पाप में। (१७)

[१८]

महात्मा लोग दूसरों के कल्याण के लिये अपनी आत्मा

को संकट में डालते हैं। (१८)

[१९]

धर्म प्रेम और श्रद्धा का विषय है। प्रेम और श्रद्धा हो तो धर्म में कोई रुकावट नहीं। (१९)

[२०]

धर्म का पहचानने वाला ही न्याय कर सकता है। (२०)



ज्ञान

[२१]

हमारे घरों से ज्यादा विद्वान् नहीं निकलते। क्योंकि हम विद्या की कद्र नहीं करते। (१)

[२२]

तुम भी कद्रदान तो अवश्य हो। पर कद्र करते हो धन की। ज्ञान की नहीं। (२)

[२३]

कमाऊ बेटे पर जैसे आपका प्यार ज्यादा होता है– इसी प्रकार अधिक बुद्धिमान (ज्ञानी) छात्र पर गुरु की कृपा अधिक रहती है। (३)

[२४]

अभ्यास करते रहने से ही विद्या टिक सकती है। (४)

[२५]

ज्ञानवान को गादी दी जाती है। (५)

[२६]

सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ, और विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ? (६)

[२७]

विद्या पाठे और द्रव्य गाठे। (७)

[२८]

दुःख ज्ञानी को ही होता है, अज्ञानी या मूर्ख दुःख नहीं मानता। (८)

(मतलब है— समझदार की मौत है। सम्पादक।)

[२९]

होनहार बचपन से ही बुद्धिमान होते हैं। (९)

[३०]

सब बुद्धि का खेल है। (१०)

[३१]

पढे लिखे बराबर भी होते हैं। पर, बुद्धि अलग अलग होती है। (११)

[२२]

यदि सोचा जाय तो महात्मा गांधी की बुद्धि पारिणामिकी थी। वे ऐसे व्यक्ति थे जो परिणाम सोच लिया करते थे। कहीं भी उलझन पैदा होती थी तो महात्मा गांधी झट सुलझा देते थे। आज वैसा नेता कोई भी नहीं है। (१२)

[२३]

संसार में बुद्धिमानों की कमी नहीं है। पर, दुनियाँ महात्मा गांधी की बुद्धि पर मुग्ध थी। तभी न सारी दुनियाँ ने महात्मा गांधी को मान दिया। (१३)



दान

[३४]

महाराज ! मुझे चौथी राणी की भक्ति से प्रसन्नता हुई। उसने मुझे सदा के लिये अभयदान दिया। उसके यहां यद्यपि राग रंग नहीं हुआ, भोजन भी सीधा सादा मिला, पर, उसमें जो स्वाद था, जो रस था, वह उन पकवानों में न था। मुझे इस माता का भोजन अमृत से भी उत्तम लगा। (१)

[३५]

अभयदान देकर संसार के प्राणियों की रक्षा करनी चाहिये। (२)

[३६]

दान का वास्तविक अर्थ है— पदार्थ पर से अपनापन हटा लेना। (३)

[३७]

जिसे देख कर हृदय में करुणा पैदा हो, ऐसे दुखी के

दु ख को निवारण किया जाय— यह अनुकम्पा दान है। (४)

[३८]

सुपात्र को दान देते समय जो भावना होती है, उससे निर्जरा होती है। दुःखी को दान देते समय जो भावना होती है— उससे पुण्य बन्ध होता है, यावत् मुक्ति की प्राप्ति होती है। (५)

[३९]

अनुकम्पा दान या करुणा दान सार्वजनिक दान है। (६)

[४०]

जब वर्षा होती है, तब वह ऊँची नीची, गन्दी स्वच्छ आदि सब जगह में गिरती है। जमीन के अनुसार फल होता है। (७)

[४१]

जो धन न दान में दिया जाय न भोग में लिया जाय— उसकी नाश रूप तीसरी गति अवश्यमेव होती है। (८)

[४२]

दे गया सो ले गया। खा गया सो खो गया। गाड़ गया मरज मार गया। (९)

[४३]

भिखारी या रंक आपके दरवाजे पर आकर पुकार करता है, तब वह आपको एक शिक्षा देता है। वह कहता है कि—"हमने पुण्यार्जन नहीं किया। इससे हमारी यह दशा हुई है। यदि तुम भी गरीबों पर दया नहीं करोगे तो तुम्हारी भी यही दशा होगी। हम ठीकरा लेकर घर घर फिरते हैं, इसी प्रकार तुमको भी फिरना होगा। (१०)

[४४]

याचक को दान देने से कीर्ति पुष्ट होती है, व दुखी को दान देने से स्नेह पुष्ट होता है और सुपात्र को दान देने से धर्म पुष्ट होता है। दान निरर्थक नहीं जाता। (११)

[४५]

शील तप और भावना अपने आप के लिये लाभप्रद हैं, परन्तु दान का फल देने वाले और लेने वाले दोनों को प्राप्त होता है। (१२)

[४६]

हिंसा से परिपूर्ण गृहस्थ का घर पाप से परिपूर्ण है। पर, उसके घर से एक टुकड़ा अतिथि को मिल जाता है—

वही गृहस्थ के सब अपराधों को माफ करा देता है। (१३)

[४७]

यह नहीं समझना चाहिये कि हम दुखियों के दुःख दूर करेंगे तो हमें भी इसी प्रकार दुःखी हो कर बदला मिलेगा। बल्कि इसके प्रभाव से हम दुखी ही नहीं होंगे। (१४)

[४८]

कंजूस विचार नहीं करता कि पूर्व जन्म के पुण्य से ही लक्ष्मी प्राप्त हुई है। यदि तू इसे कैद करेगा तो यह रूठ कर चली जायेगी और फिर नहीं आयेगी। (१५)



शील या ब्रह्मचर्य

[४६]

ब्रह्म— अर्थात् आत्म-तेज— आत्म-स्वरूप— उसका सेवन करना, यह ब्रह्मचर्य है। उस तेज का नाश करना कुशील है। विषय-वासना से ब्रह्मचर्य की हानि होती है। (१)

[५०]

जैसे तरुवर बिना मूल के नहीं टिक सकता और गुण (रस्सी) बिना तीर नहीं चल सकता— उसी प्रकार शील सब व्रतों का मूल है। शील नहीं तो सब व्रत व्यर्थ हैं। शीलरूप गुण नहीं तो क्रियारूप कमान किस काम की ? (२)

[५१]

आत्मा का पर-परिणति का त्याग निश्चय-ब्रह्मचर्य है। (३)

[५२]

गुरुओं के पास रह कर पठन-पाठन द्वारा आत्मस्वरूप

को प्रकट करना ब्रह्मचर्य है। (४)

[५३]

ब्रह्मचर्य रहा तो सारे व्रत रहे। यदि इस व्रत में खामी रही तो सब में खामी आ जायगी। (५)

[५४]

ब्रह्मचर्य व्रत के खण्डन से पाँचों व्रतों का खण्डन हो जाता है। (६)

[५५]

शील के प्रभाव से सुदर्शन अमर हो गये। (७)

[५६

ब्रह्मचर्य ही के प्रभाव से मुक्ति की प्राप्ति होती है। (८)

[५७]

ब्रह्मचर्य विभाव अवस्था को छुड़ा कर स्वभाव अवस्था को प्राप्त कराने वाला है। (९)

[५८]

शील पालना महान कठिन है। जवानी में इसका पालना

कठिनतर है। धनवानों का शील पालना कठिनतम है। हजारों में कोई एक भाग्यवान शील पाल सकता है। (१०)

[५९]

कामना से वशीभूत व्यक्ति अहमी होता है। (११)

[६०]

किंपाक फल देखने में सुन्दर, खाने में मीठे और परिणाम में प्राणहारक होता है— इसी प्रकार विषय देखने में सुन्दर, भोगने में मीठे और परिणाम में भयकर होते हैं। (१२)

[६१]

विष से विषय अधिक जहर वाले हैं। (१३)



तप

[६२]

किसी अपराध का शूली का शूल हो जाना तप का प्रभाव है। (१)

[६३]

वीतराग देव ने हमको एक जड़ी दी है। इस जड़ी को सूँघ कर एक भयकर नाग और पाँच नागिनें मर जाती हैं। वह जड़ी है तप। (२)

[६४]

तप रूप जड़ी से मन रूप भुजङ्ग और पाँच इन्द्रियाँ रूप नागिनें मर जाती हैं। (३)

[६५]

तपस्या से काम पर काबू पाया जा सकता है। (४)

[६६]

शक्ति होते हुए भी साधु साध्वी अष्टमी, चतुर्दशी या

उपवास न करें तो प्रायश्चित आता है। (५)

[६७]

यथाशक्ति तपस्या तो करनी ही चाहिये। पर तपस्या में क्षमा धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। (६)

[६८]

ऊणोदरी तप हर एक से नहीं होता। स्वादिष्ट वस्तु सामने आ जायगी तो दो ग्रास कम नहीं खायेंगे, बल्कि ज्यादा ही खाने में आयेंगे। (७)

[६९]

कम खाओगे तो शरीर की स्थिति व्यवस्थित बनी रहेगी। (८)

[७०]

सिर्फ शरीर को सुखाने का नाम ही तप नहीं है। शरीर के साथ जो अपराध करने वाले रागद्वेष हैं— उनको सुखाने की जरूरत है। (९)

[७१]

प्रभु की आज्ञा के बाहर का तप— तप नहीं, केवल

भूखों मरना है। (१०)

[७१]

वीर पुरुष आत्मिक धर्म के लिये ही घोर तप करते हैं। (११)

[७२]

संयम और आराम जबरदस्ती किसी के गले मंढ़ा नहीं जा सकता। (१२)



भावना

[७४]

निर्मल भावना से पाप उसी प्रकार छूट जाता है, जैसे निर्मल जल से मैल। (१)

[७५]

फल भावों का मिलता है क्रिया का नहीं। (२)

[७६]

परिणामों के चढ़ाव से अन्तर मुहूर्त में केवल ज्ञान की भी प्राप्ति हो सकता है। (३)

[७७]

जो जीव अच्छा होता है, उसकी भावना अच्छी होती है। पर, दुष्ट जीवों की भावना दुष्टता की ओर होती है। (४)

[७८]

भावना के अनुसार फल की प्राप्ति होती है। (५)

[७९]

हाथ जोड़ना, वन्दन करना, पाठ बोलना आदि द्रव्य वन्दन है, भावों की शुद्धि भाव वन्दन है। (६)

[८०]

भावना पर ही सब होता है। (७)

[८१]

परिणामों के चलायमान होने से जीव दुर्गति का अधिकारी होता है। (८)



साधु

[८२]

यथार्थ बात को कोई नहीं कहता। तुम्हारा साधु लिहाज करते हैं— और तुम साधु का। यही कारण है कि सुधार नहीं होता। जहाँ "तिन्नाणं तारयाणं" था वहाँ अब "डुबाणं डोबियाणं" हो गया। (१)

[८३]

आज यदि कोई श्रावक साधु को कहे कि— महाराज! आप अमुक गलती कर रहे हैं तो साधु का वश चले तो डण्डा लेकर पीछे लग जायँ। साधु नहीं सोचते कि हम में अवगुण है तो उसको सुधारें। (२)

[८४]

साधु न तो किसी को श्राप देता है और न किसी को वरदान ही। (३)

[८५]

उस समय मेरे जैसे खाऊ लोग साधु नहीं बने थे। आज

हम लोग दिन भर चरते रहते हैं। सुबह दूध नाश्ता चाहिये। १० बजे भोजन होगा। दोपहर में फिर नाश्ता और शाम को भोजन के बिना काम नहीं चलता। इस प्रकार आज के हम साधु लोग अन्न के कीड़े हो रहे हैं। (४)

[८६]

साधु साधु के, साध्वी साध्वी के आपस में नहीं बनती, मानों जायदाद का बँटवारा हो रहा हो। (५)

[८७]

कषाय से अभिमान की वृद्धि होती है, इसी से गड़बड़ी हो रही है। (६)

[८८]

बिना सोचे समझे मोह वश चेले बना लेना क्या उचित है? जैसे आपको स तान का मोह होता है, वैसे ही हमको आज चेला का मोह है। (७)

[८६]

अयोग्य साधुओं को देख कर ही आज कल पढ़े लिखे एवं समझदार व्यक्तियों की हम में श्रद्धा बहुत कम रह गई

है। पर, इस पर विचार करे कौन ? (८)

[९०]

जब से साधु नगर में उतरने लगे तब से गृहस्थों से संस्तव परिचय बढ़ने लगा। (९)

[९१]

साधु साध्वी प्रतिक्रमण न करे तो दण्ड आता है। (१०)

[९२]

जहाँ भक्ति विशेष हो जाती है— वहाँ निर्दोष वस्त्र, पात्र और आहार पानी का मिलना साधुओं को कठिन हो जाता है। (११)

[९३]

क्रोध, मान, माया और लोभ हटाने से ही साधु बनता है। केवल वेश धारण करने से नहीं। (१२)

[९४]

साधु साध्वी को खयाल करना चाहिये कि धर्म के नाम

पर हम को टुकडे मिल रहे हैं। यदि हम ये टुकडे खाकर धम न करेंगे तो हमें भैंस का पाड़ा बनना पड़ेगा। (१३)



साम्य भाव

[६५]

स्वर-मण्डल या संगीत के साथ यदि ऋषि लोग दोनों भाषाएँ बोलते हैं तो यह प्रशस्त है। यदि कोई संस्कृत की निन्दा करे और प्राकृत को ऊँची चढावे या प्राकृत की निन्दा करके संस्कृत को ऊँची चढ़ावे तो वह शास्त्राज्ञा के बाहर है। (१)

[६६]

आज जैसी खाड़ा खड़ी पहले नहीं थी। एक घर में चाहे १० मत होते, तो भी सांसारिक प्रेम उनका एक सा रहता था, धर्म और मान्यता चाहे जुदी हो। (२)

[६७]

महाराज तो आज हैं– कल नहीं। चौमासा पूरा हुआ कि अपना बिस्तर गोल करके चले जायेंगे। तुम को संघ में रहना है। फिर लड़ालड़ी क्यों करते हो। (३)

[९८]

नाहक लड़ लड़ कर धर्म को लज्जित क्यों करते हो। झगड़ा प्रेम को तोड़ देता है। (४)

[९९]

हृदय में अज्ञानता के बादल छाये हैं– जब तक जोरदार पवन न चले, हृदय का अन्धकार नहीं मिट सकता। (५)

[१००]

जो लोग वैर विरोध को भूल कर आत्मा को पवित्र कर लेते हैं, वे धन्य हैं। (६)

[१०१]

यह *त्रिपदी संसार की समस्त समस्याओं को हल करने का एक मात्र साधन है। (७)

[* उत्पाद, विनाश और ध्रौव्य वाले संसार के सब पदार्थ हैं। अपेक्षावाद से सब की बातों को आदर देने से सब झगड़े शान्त हो सकते हैं।]

[१०२]

आप इन रागद्वेष को जीतने वाले वीतराग के भक्त

कहलाते हो, फिर आप स्वयं रागद्वेष के चक्कर में आते रहोगे तो क्या यह उचित कहा जायगा। (८)

[१०३]

जिसका हृदय उदार होता है, वह रागद्वेष से रहित होता है। इसलिये वह महावीर का सच्चा अनुयायी माना जाता है। (९)

[१०४]

जैनों में धर्म और गुरु का बँटवारा हो गया। देव का नहीं। (१०)

[१०५]

तुम अपने अपने आचार व्यवहार अलग अलग रक्खो पर भगवान के झण्डे के नीचे एक होकर रहो वो दुनियाँ में प्रभाव पड़े। (११)

[१०६]

जहा वादविवाद हो वहा धर्म का रहना कठिन है। (१२)

[१०७]

वीतराग देव का धर्म स्याद्वाद का है। लोग एकान्त पक्ष

लेकर धर्म का नाश कर रहे हैं और फिर भी अपने को स्याद्वादी कहते हैं। (१३)

[१०८]

धर्म की रक्षा के लिये वैर विरोध को छोड़ कर एक हो जाओ! (१४)



विनय

[१०६]

जिसने अभिमान का त्याग कर दिया वही विनय कर सकता है। जिसका हृदय अभिमान से भरा हुआ है— वह भला क्या विनय करेगा ? (१)

[११०]

विनय मूल ही धर्म है। (२)

[१११]

विनय अन्तरङ्ग तप है। जहाँ विनय नहीं वहाँ धर्म या तप नहीं। (३)

[११२]

विद्यागुरु (गृहस्थ) को आते देख कर यशोविजयजी महाराज व्याख्यान के पाट से उठ बैठे और नीचे आ गये। यह विनय है। (४)

[११३]

सांसारिक या धार्मिक कोई भी विद्या विनय गुण के बिना नहीं आती। (५)

[११४]

जिससे वाचना ली जाय उसका विनय करना जरूरी है चाहे वह छोटा हो या बड़ा। (६)

[११५]

बिना वंदन आदि किये वाचना लेना ज्ञान की आशातना है। (७)

[११६]

पुराने जमाने में शिष्य भी आज्ञाकारी होते थे। राजाज्ञा चाहे टल जाती, पर गुरु आज्ञा कभी टाली नहीं जाती थी। (८)

[तभी तो सुखी थे। सम्पादक।]

[११७]

छोटे को बड़ा समझे इसका रहस्य यह है कि बड़े को अभिमान न आवे। (९)

[११८]

सब साधु वन्दनीक हैं। आप लोग " नमो लोए सव्व साहूण " बोलते हो। इसमें आचार्य भी सबसे छोटे साधु या साध्वी को नमस्कार करते हैं। क्या आचार्य नमस्कार मन्त्र नहीं बोलते ? (१०)

[११९]

भाई ! तेरा पुण्य ऊँचा है तो तू आचार्य बना। फिर, विनय-गुण को क्यों छोड़ता है। (११)

[१२०]

जब आचार्य छोटे को खमाता है तो छोटे के मन में यह खयाल नहीं रहता कि " मैं तुच्छ हू।" वह भी आचार्य की तरह सब को खमाता है और आचार्य से विनय गुण सीख लेता है। (१२)

[१२१]

आज ऐसी प्रवृत्ति चल रही है कि बड़े छोटे की परवाह नहीं करते। " अबे तुबे " तक बोलने लग गये हैं। (१३)

[१२२]

जो लघु बन कर रहता है, उसी को गौरव का पद मिलता

है। पर, जो घमण्ड में मस्त रहता है— उसे प्रभु मिलना कठिन है। (१४)

[१२३]

“ राजन् ! पानी पहाड़ पर नहीं चढ़ता। विद्या विनय के बिना नहीं आ सकती। आप इस चाण्डाल को सिंहासन पर बिठलाइये और आप नीचे बैठिये, तब विद्या आ सकेगी।” (१५)

[१२४]

विनय सहित शास्त्र को पढ़ना आचार है और विनय रहित पढ़ना अतिचार है। (१६)

[१२५]

अपने वास्तविक गुरु का नाम न बतला कर अन्य प्रसिद्ध विद्वान् को अपना गुरु बता देना कुटिलता है। (१७)

[१२६]

बिना रीति रिवाज जाने किसी के पास जाना उचित नहीं, फिर भी विनय गुण सब सिखा देता है। (१८)

[१२७]

अभिमानी व्यक्ति कभी सीधी बात नहीं करता। (१९)

[१२८]

अभिमान रावण जैसा न होना चाहिये। (२०)

[१२९]

विनयवान शिष्य गुरु की आज्ञा को मान देना पसन्द करते हैं। (२१)

[१३०]

जहां अभिमान होता है वहां ज्ञान नहीं आता। (२२

[१३१]

अभिमान आ जाय तो तेजी आये बिना नहीं रहती (२३)



सम्प्रदाय वाद

[१३२]

मूल भगवान महावीर हैं। हमने उनको तो भुला दिया और गच्छरूपी शाखाएँ पकड़ ली। आपस में जूतमफाक शुरू कर दी, यहाँ तक कि यदि कोई जैन धर्म की निंदा करता होगा तो हम उस विष घूँट को पी जायेंगे। पर, सम्प्रदाय या गच्छ की निंदा करता होगा तो तलवार लेकर बाहर मैदान में डट जायेंगे। (१)

[१३३]

सभी सोचते हैं कि भगवान एक हैं— पर सम्प्रदाय और गच्छ का मोह नहीं छूटता। (२)

[१३४]

ममत्व से ही रागद्वेष पैदा होता है। रागद्वेष झगड़े की जड़ है। वीतराग देव का मार्ग रागद्वेष करने का नहीं है। (३

[१३५]

सङ्घ की उन्नति हो तो धर्म की उन्नति हो, धर्म की उन्नति हो तो तीर्थ की उन्नति हो, तीर्थ की उन्नति हो तो तीर्थङ्कर के वचन की उन्नति हो। (४)



सङ्गठन

[१२६]

एक तो एक और एक से ग्यारह हो जाते हैं। बल बढ़ जाता है। (१)

[१२७]

ताश के खेल में 'एक्का' सबसे बड़ा पत्ता माना जाता है- यह गुलाम, बेगम और बादशाह सब को जीत लेता है। क्या आपने इससे शिक्षा ली ? (२)

[१२८]

आप लोग दूसरों की भूल निकालने का ठेका लेते हो परिणाम यह होता है कि न तो आप दूसरों की भूल निका सकते हो न आपकी दृष्टि अपनी भूलों पर ही जाती है। (३

[१२९]

आप स्वयं अच्छी बात का आचरण करो। आपको देख आपको आदर्श मान कर- दूसरे स्वय सुधर जायेंगे

आपको सुधारने की जरूरत नहीं। (४)

[१४०]

बात खरी भी हो तो झगड़ा करने वाला उसमें भी कोई न कोई खोट निकाल ही लेता है। (५)

[१४१]

जबरन्सती जिसे करना होती है उसे उल्टा रास्ता ही सूझता है। (६)

[१४२]

जो व्यक्ति टुकडे करने वाले हैं वे निन्दा के और जोड़ने वाले आदर के पात्र हैं। (७)

[१४३]

दूसरों की नहीं— अपनी भूल सुधारने की आदत डालो। (८)

[१४४]

आत्मा के अन्दर का मैल निकाल कर हृदय शुद्ध हो जाय तो सम्प होने में देर नहीं लगती। (९)

[१४५]

बाप दादे योग्य थे तो वे पच थे। पर, आज उनके अयोग्य लड़के भी अपना हक जमाते हैं— यही कारण है कि समाज डूब गया। (१०)

[१४६]

अपने में काम करने की योग्यता न हो तो सच का काम सच को सौंप दो। (११)

[१४७]

लघु मति की रक्षा करना बहु मति का फर्ज है। (१२)

[१४८]

संघ में फाटा-फूट है— इसीलिये फूट है। (१३)

[१४९]

हर एक काम में उत्तर साधक की जरूरत होती है। (१४)

[१५०]

सब बिलों में हाथ न डालो— क्योंकि सब में चूहे नहीं रहते, किसी में से साँप भी निकल सकता है। (१५)

स्वामी वात्सल्य

[१५१]

समान धर्म वाले की वत्सलता करना स्वामी वात्सल्य है। (१)

[१५२]

साधर्मी का निरादर स्वयं भगवान का निरादर है। (२)

[१५३]

साधर्मी को भोजन कराने वाले को सुपात्र को दान देने का लाभ होता है। (३)

[१५४]

साधर्मी को केवल भोजन करा देना मात्र ही स्वामी-वात्सल्य नहीं है, पर, उनके सब प्रकार के कष्टों को दूर करना भी स्वामी वात्सल्य है। (४)

[१५५]

साधर्मी के यहाँ किसी उपवास आदि के कारण भोजन के लिये न आयें तो बात जुदी है, पर, साधर्मी का घमण्ड के कारण अनादर करना स्वयं भगवान का अपमान करना है। (५)

[१५६]

साधर्मी का परस्पर प्रेम बढ़ाने और धर्म की वृद्धि करने के लिये यह आवश्यक है कि एक दूसरे को निमंत्रण दें। (६)

[१५७]

साधर्मी वात्सल्य तभी कहा जायगा— जब धनी और निर्धन का कोई ख्याल न रखते हुए वत्सलता की जाय। (७)

[१५८]

मदद कमजोरों को दी जाय, जोरावर को मदद की जरूरत नहीं। समुद्र में कई नदियाँ जाती हैं। पर, वहाँ जाकर सब पानी अपेय हो जाता है। जहाँ पानी का अभाव हो वहाँ नहर जाय तो लहर हो जाय। (८)

[१५९]

जिस प्रकार आप माता, बहिन और पुत्री की सार सम्भाल लेते हो— उसी प्रकार साधर्मी बहनों की सार सम्भाल करनी चाहिये। (९)

मन

[१६०]

ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ मन का प्रवेश न हो। (१)

[१६१]

पहाड़ हो, समुद्र हो, नदी हो, नाला हो, आसमान हो या कोई भी कठिन से कठिन स्थान हो— मन सब जगह पहुँच जाता है। (२)

[१६२]

काम का नाम मनोभव है। वह मन के संकल्प के साथ ही उत्पन्न हो जाता है। (३)

[१६३]

यदि काम से बचना हो तो मन में संकल्प ही न करो, विचार या ख्याल छोड़ दो। (४)



माया

[१६४]

पुरुष माया करता है तो स्त्री बनता है। स्त्री माया करती है तो उसे हिजड़ा बनना पड़ता है। (१)

[१६५]

साधर्मी के साथ छल (माया) करना स्वयं भगवान को ठगना है। (२)

[१६६]

कपटाई करने से अनन्त संसार बढ़ जाता है। (३)

[१६७]

किसी की अमानत में खयानत करना घोर पाप है। (४)

[१६८]

छोटे बालक निष्कपट होते हैं। (५)

[१६८]

बच्चों का हृदय निर्दोष होता है। उसको जिस रंग में रँगना चाहो रंग लो। (६)



वणिक् बुद्धि

[१७०]

महात्मा गांधी की तरह वणिक् बुद्धि वाले सारी दुनियाँ को जीत लेते हैं। (१)

[१७१]

रावण के राज्य में कहा जाता है— कोई बनिया वजीर नहीं था। इसी से उस जैसे शक्तिशाली राजा का राज्य भी नष्ट हो गया। (२)



कथा और कथाकार

[१७३]

जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को जानने वाला होता है, वही धर्म कथा करने का अधिकारी है— हर एक व्यक्ति धर्म कथा नहीं कर सकता। (१)

[१७२]

दुनियाँ में बिगाड़ न हो तो सुधार और उपदेश की जरूरत नहीं। (२)

[१७४]

जिस कथा के सुनने से भाव ठीक हों वह सुकथा है और जिसके सुनने से अधर्म की ओर प्रवृत्ति हो वह विकथा है। (३)

[१७५]

श्रोता जिस भावना वाला होगा वह उसी भावना के अनुसार कथा विषय को अपनायेगा। (४)

[१७६]

विमुख को पहले सन्मुख लाना पड़ता है। विमुख व्यक्ति धर्म का आराधन नहीं कर सकता। (५)

[१७७]

सुनने वाला अभव्य हो तो उसे तीर्थङ्कर भी नहीं समझा सकते। (६)

[१७८]

जिस प्रकार बादलों द्वारा बरसाया हुआ जल भिन्न भिन्न पृथ्वी और भिन्न भिन्न वृक्षों में भिन्न भिन्न परिपाक और स्वाद को प्राप्त होता है, उसी प्रकार भगवान की वाणी भी पुरुष विशेष को पा कर भिन्न २ रूप धारण करती है। (७)

[१७९]

पहले पहल जीव धर्म में तभी आकर्षित होता है— जब उसको कथा सुन कर उल्लास होवे और उल्लास तब होता है, जब उसको अपनी जरूरत का ज्ञान प्राप्त होवे। (८)

[१८०]

जिस कथा से आत्मा को कुछ न कुछ लाभ होवे उसे

धर्म कथा कहते हैं। (९)

[१८१]

जन्म, जरा, मरण, भय, व्याधि, वेदना आदि में जिन वर वचन (धर्म-कथा) के सिवाय कोई शरण देने वाला नहीं। (१०)

[१८२]

आँवलों का खाना और बड़ों का कहना पीछे मीठा लगता है। (११)

[१८३]

ज्ञान सिद्धान्तों का होता है, क्रिया चारित्रों का नहीं। (१२)



कर्म

[१८४]

फल कर्मों का छुटकारा नहीं देता। (१)

[१८५]

जिस प्रकार सूर्य पर से बादल हट जाते हैं तो प्रकाश हो जाता है, उसी प्रकार कर्मों के हट जाने से ज्ञान हो जाता है। (२)

[१८६]

आत्मा उपाधियाँ (कर्मों) को दूर करके स्वधर्म में आता है। स्वधर्म में आना ही आत्मा का उद्धार है। (३)

[१८७]

सत्व, रज, तम रूप गुणों (कर्मों) से रहित आत्मा ही परमात्मा बन जाता है। (४)

[१८८]

भारी कर्मी जीव हठीला होकर न जाने क्या २ व्यवहार करने लग जाता है। (५)

[१८९]

जप, तप, तितिक्षा आदि क्रिया द्वारा कर्मों की उपाधि दूर करके आत्मा को निर्मल किया जा सकता है। (६)

[१९०]

जीव को कोई शरण देने वाला नहीं। अपना शुभ आप ही कर सकता है। अपनी रक्षा आप करने में समर्थ है। (७)

[१९१]

आत्मा कितना ही भारी कर्म का करने वाला हो, पर, निमित्त मिलता है तो तिरना हो ही जाता है। (८)

[१९२]

जो वस्तु आगे जाकर दुःखदायी हो— उसके लिये पहले दुःख उठाना अनुचित नहीं। (९)

[११३]

बिना विचारे किये गये काम का शल्य जीवन भर खटकता रहता है। (१०)

[११४]

होनहार बात पहले मुँह पर आ जाती है। (११)

[११५]

जब दुर्भाग्य का जोर होता है तो किनारे पर आया जहाज भी डूब जाता है। (१२)

कुमति और सुमति

[१६६]

आत्मा की दो सखियाँ हैं एक कुमति, एक सुमति। कुमति खोटी बुद्धि का नाम है और सुमति अच्छी बुद्धि को कहते हैं। (१)

[१६७]

जब आत्मा कुमति का साथ करता है— तो वह उसको बुरी बुरी बातों में प्रवृत्त करती है और जब सुमति को साथ लेता है— तब उसे अच्छे अच्छे सत्कर्म दिखलाई देते हैं। (२)

काल चक्र

[१९८]

एक दिन सदा किसी का नहीं रहता। समय के प्रभाव से धनी निर्धन और निर्धन धनवान हो जाते हैं। कल ही जो, [illegible] राजा थे, आज वे ठोकरें खाते फिरते हैं। (१)

[१९९]

यह संसार चक्र सदा चलता फिरता होता रहता है। जो मोह को जीतता है उसका जीवन ऊँचा जाता है। (२)

[२००]

संयोग वियोग वाला है। (३)

[२०१]

जगत की सब वस्तुएँ क्षण भंगुर हैं। इनसे प्रेम करना आत्मा का नुकसान करना है। (४)

[२०२]

आप संसार के इस स्वरूप को समझ जाय तो विरक्त हो जाय। (५)

—६—

क्रिया

[२०३]

कोई भी क्रिया निष्फल नहीं होती। भावना के अनुसार क्रिया का फल अवश्य होता है। (१)

[२०४]

यह नहीं समझना चाहिये कि एक व्यक्ति को जिसके आराधन से लाभ हो गया, दूसरे को भी केवल उसी से लाभ होगा, किसी दूसरी क्रिया से नहीं। (२)

[२०५]

दुनियाँ में एक रोग हो तो एक ही दवा से काम चल जाय। पर, जब रोग भिन्न भिन्न हैं, तो दवाएँ भी भिन्न भिन्न आवश्यक हैं। इसी तरह कर्म रोग अनेक प्रकार के हैं, इसलिये धार्मिक क्रियाएँ भी भिन्न भिन्न हैं। (३)



नर नारी

[२०६]

स्त्री और पुरुष में से दोनों एक साथ धर्मात्मा हों तो उनका संसार चक्र ठीक चलेगा। धर्म की आराधना और प्रभावना ठीक चलेगी। उनमें कभी क्लेश— वैमनस्य नहीं होगा। दोनों धर्माराधन कर सकते हैं। (१)

[२०७]

कभी घर की सरकार नाराज न हो जाय, उसको राजी रखने के लिये आदमी सब कुछ करता है। (२)

[२०८]

राजा हो या रंक सब स्त्री के वश में होते हैं। (३)

[२०९]

साधर्मी पुरुष ही नहीं, परन्तु स्त्रियाँ भी हो सकती हैं। (४)

[२१०]

स्त्री जब तक देवी है— तब तक वह देवी है— लक्ष्मी स्वरूपा है। उसमें सहनशीलता, सदाचार और त्याग है— तभी तक वह देवी है। स्वयं तिरती है— दूसरों को तारती है। (४)

[२११]

स्त्री जब अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाती है— तब वह काली बन जाती है। देखिये फिर उसका तमाशा। स्वयं मरती है, औरों को मारती है। (६)

[२१२]

स्त्रियाँ ही नीच नहीं, पुरुष भी नीच हो सकते हैं। महात्मा गांधी की हत्या करने वाला कौन था? स्त्री या पुरुष? ऐसे महापुरुष का नाश करते हुए उस नीच को शर्म न आई। (७)

[२१३]

माता और पिता का हक बराबर है। (८)

[२१७]

स्त्री को पति का पूरा प्रेम न मिले तो बिना शस्त्र का मरणा है। (९)

[२१८]

गर्भ का जीव मा बाप के लिये सुखदायी होगा या दुःख दायी— यह पता उसके गर्भ में आने ही चल जाता है। (१०)

[२१९]

स्त्रियाँ अपने पति के लिये प्राण तक देने को तैयार हो जाती है— अतः पुरुषों का भी कर्तव्य है कि वे उनके सुख दुःख का ध्यान रक्खें। (११)



परीक्षा

[२१७]

इम्तिहान में जो पास होता है, उसी का नाम आगे आता है। (१)

[२१८]

इम्तिहान लेने वाला ऐसे सवाल निकालता है कि जिस से इम्तिहान देने वाला नापास हो जाय। पर, यदि उसी की परीक्षा ली जाय तो शायद वह भी नापास हो जाय। (२)

[२१९]

किताबों से सवाल निकाल कर दूसरों पर बोझ डाल देना आसान है— पर, स्वयं करना कठिन है। (३)

प्रायश्चित

[२२०]

बच्चे की तरह निर्विकार होकर प्रायश्चित करने के लिये आलोचना करनी चाहिये। (१)

[२२१]

भावना का परिवर्तन और पश्चात्ताप ही सच्चा प्रायश्चित है। (२)

[२२२]

शुद्ध भाव से "मिच्छामि दुक्कडं" देने के बाद फिर उसी काम को नहीं करना चाहिये। (३)



विविध-विचार

[२२३]

जो वस्तु पूज्य भाव प्रदान करती है— उसकी पूजा की जाती है। (१)

[२२४]

जब कोई सहारा नहीं होता है— तब एक मात्र परमात्मा का सहारा ही सहायक होता है। (२)

[२२५]

महापुरुषों के केवल नाम लेने से काम नहीं चलता। हमें भी उनके अनुसार अपनी आत्मा का दमन करना चाहिये। (३)

[२२६]

अपने घर की हैसियत के अनुसार खर्च करना चाहिये। ऐसा न हो कि घर की बहू के गहने बिक जायँ और घर को भी रहन रखना पड़े। (४)

[२२७]

लोग नाक रखने के लिये सब कुछ करते हैं। मैं पूछता हूं— हाथी से बड़ी नाक किसकी है? इसमें क्या है? इसमें लिट और गन्दगी ही तो भरा रहता है! आपने कभी गरीब गुरबों का खयाल किया? (५)

[२२८]

धर्म, धर्म गुरु और धर्म प्रवर्तकों की निन्दा करवाने वालों से बढ़ कर दुनियाँ में कोई भी बड़ा अपराधी नहीं होता। (६)

[२२९]

जब पढ़ने का नम्बर आता है, तब अच्छी संगत हो जाती है। (७)

[२३०]

वाणी पाकर कौन खुश नहीं होता?। (८)

[२३१]

बुद्धिमान मनुष्य मीठी नजर से विधवा का पालन करते हैं— ताकि वह अपना दुःख भूल जाय। (९)

[२३२]

पेट मे राड़ा हो तो ज्ञान ध्यान मे मन नहीं लगता। (१०)

[२३३]

अपने अपने स्थान पर सब जोरावर हैं। (११)

[२३४]

जिसके ५ इन्द्रियाँ और ४ कषाय, इन ६ की हजामत हो जाय वही मुण्डित है। (१२)

[२३५]

जहाँ साधु आश्रय लेता है— उसी स्थान को उपाश्रय कहते हैं यदि उसमें साधु की ममता हो तो फिर वह परिग्रह हो जाता है। (१३)

[२३६]

सरकार की आज्ञा न मान कर चोरी करे उसको सजा मिलती है न ? उसी प्रकार धर्म की सरकार की आज्ञा न मानने वाला दुर्गति में जाता है। (१४)

[२३७]

गुरु आने पर लम्बा पड़ा रहना आशातना है। (१५)

[२३८]

जहाँ सूर्य चमक रहा हो वहाँ कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति दीपक या बैट्री से काम नहीं लेता। (१६)

[२३९]

साधु हो या गृहस्थ— बुरेपन में सत्कार करने वाले गिरते हैं। (१७)

[२४०]

काल का मुँह काला होता है। (१८)

[२४१]

बड़े आदमी जब बीच में गिर जाते हैं तब उपद्रव शांत हो जाता है। (१९)

[२४२]

दुनिया में काम प्यारा है चाम नहीं। (२०)

[२४३]

क्षमोपशम वाले को उपयोग की जरूरत है। अपन

छद्मस्थ हैं। कोई छद्मस्थ कहे कि मैं भूल नहीं करता तो वह मिथ्यावादी है। (२१)

[२४४]

अमर तो कोई रहता नहीं। (२२)

[२४५]

पुत्र तीन प्रकार के होते हैं। (१) सुपुत्र— जो अपने बाप के नाम को बढ़ावे। (२) पुत्र— जो अपने बाप के नाम को कायम रखे। (३) कुपुत्र— जो अपने बाप के नाम को बट्टा लगावे। इसी प्रकार शिष्य भी तीन प्रकार के होते हैं। (२३)

[२४६]

औरत, पुत्र, परिवार से आत्मा का कल्याण होने वाला नहीं है, आत्मा का कल्याण धर्म से ही होगा। (२४)

[२४७]

मातृ-भक्त पुत्र सुन्दर विचार वाला होता है। (२५)

[२४८]

यदि कोई बीमार या अनशन की हालत में किसी के

छोड़ कर चला जाय तो यह भगवान की आज्ञा का विराधक है। (२६)

[२४६]

सम्यक्त्व रहा तो सब रहा। सम्यक्त्व गया तो सब गया।

[२५०]

जिसको स्वयं राजा सन्मान दे, भला फिर प्रजा का तो पूछना ही क्या? (२८)

[२५१]

बच्चों में धर्म का प्रेम कुछ अधिक होता है। (२६)

[२५२]

लक्ष्मी किसी भी दरवाजे से आवे यही ठीक है। (३०)

[२५३]

मा बाप का मोह नहीं छूटता। (३१)

[२५४]

चिन्ता फिक्र रहती है तो शरीर पुष्ट नहीं होता। (३२)

[२५५]

शुद्धात्मा ही सच्चिदानन्द ब्रह्म है। (२३)

[२५६]

अन्धेरे में ही पापियों को मौका मिला करता है। (२४)

[२५७]

हिम्मत बढाने से बढती है। (२५)

[२५८]

वीतराग देव के मार्ग में रिश्तेदारियों को महत्त्व नहीं दिया जाता। (२६)

[२५९]

ऐसा काम हाथ में लो कि जिसे कोई न छुड़ा सके। (२७)

[२६०]

अपने पुण्य में भाग कौन दे ? (२८)

[२६१]

अपना पाप आप जाने। कितना ही छिपाया जाय अन्दर ही खटकता रहेगा। (२९)

[२६२]

धनवान धन को तिजोरी में रख कर लोहे का टुकड़ा अपने पास रखता है। पहरेदार बनता है। (४०)

[२६३]

मूड़ा का बढ जाना डूबने का कारण है। (४१)

[२६४]

जो स्वयं अपने को नहीं बचा सकता वह दूसरे को क्या बचावेगा ? (४२)

[२६५]

जो वस्तु निषिद्ध या त्याज्य है— उसी को स्वीकार किया जायगा तो फल उल्टा ही न होगा। (४३)

[२६६]

एक व्यक्ति अपनी गलती से अपमानित होकर दुःख पा रहा हो उस समय यदि उसकी दूसरा व्यक्ति हँसी उड़ाये तो उसके हृदय को कितना क्षोभ होता है— इसका सबको अनुभव होगा। (४४)

[२६७]

नींद ऐसी खराब वस्तु है कि काम नहीं चलने

ता) (४५)

[२६८]

शक्त होने पर सहनशील होने में गौरव है। (४६)

[२६९]

हाथ पोला तो जगत गोला। (४७)

[२७०]

जहर की लहर तो आ ही जाती है। (४८)

[२७१]

धर्मों की रक्षा करना, गरीबों को अन्न देना— यह सरकार का काम है। (४९)

[२७२]

मिट्टी सब धातुओं से ज्यादा पवित्र है। (५०)

[२७३]

किसी का हक छीनना अपराध है। (५१)

[२७४]

जवानी मस्तानी होती है पर सच्ची बुद्धि नहीं होती।

क्योंकि वहाँ अनुभव की छाप नहीं होती। (५२)

[२७५]

बिना परमार्थ सोचे किसी बात का समर्थन करना अविवेकता का द्योतक है। (५३)

[२७६]

राजा का काम इन्साफ करने का है। (५४)

[२७७]

मान का बदला उतरता नहीं। पर साधु, का अपमान अनन्त संसारी बना देता है। [५५]

[२७८]

बालक को देखने का हर एक का दिल होता है। (५६)

[२७९]

बाल स्वभाव बदला नहीं जा सकता— बाल चेष्टा आ ही जाती है। (५७)

[२८०]

गुणवानों के गुण प्रकट नहीं होते तब तक विश्वास नहीं होता। (५८)

[२८१]

अविद्वानों की अवज्ञा होती है। (५९)

[२८२]

रत्नाकर के किनारे दरिद्र रहने में किसका दोष ? व्यक्ति का या रत्नाकर का ? (६०)

[२८३]

बिकती वस्तु जो ज्यादा दाम दे उसको मिलती है। (६१)

[२८४]

परमार्थ सोच कर काम करेगा वह पाप से बचेगा। (६२)

[२८५]

स्वार्थ साधने वाला अपराधी है। (६३)

[२८६]

चमत्कार को नमस्कार दुनियाँ करती है। (६४)

[२८७]

हिताहित का विचार करके काम करने की प्रभु आज्ञा है। (६५)

[२८८]

सब को अप्रीति हो वह काम नहीं करना। (६६)

[२८६]

"नानी ने खसम किया तो दोहिते को दण्ड ?" क्या यह न्याय है ? (६७)

[२६०]

उचित ढङ्ग से वाद करने वाला वादी और विवादी—वितण्डावादी कहा जाता है। (६८)

[२६१]

पराई ऋद्धि और अपनी बुद्धि सबको अधिक मालूम होती है। (६६)

[२६२]

'वाद में हारने का क्या दुःख होता है ? इसका वर्णन वही कर सकता है जिसको इस प्रकार वाद में हारने का अनुभव प्राप्त हो। (७०)

[२६३]

बातें करना सरल है पर स्वयं आचरण करना कठिन है। (७१)

[२९४]

घर पर बीतती है तो पता चलता है। (७२)

[२९५]

निर्लज्ज को भय किसका। (७३)

[२९६]

मांगते से मांगना लानत है। (७४)

[२९७]

ज्यादा आहार विकार करता है। (७५)

[२९८]

बच्चों की आदत होती है कि वे कभी निठल्ले नहीं बैठते। यदि बैठे तो समझ लेना इसमें कोई रोग है। (७६)

[२९९]

लोग कुल रीति के नाम से हर काम को मंजूर कर लेते हैं। अच्छी बुरी नहीं देखते। बहुत कुछ रीतियाँ तो ब्राह्मण लोग अपने स्वार्थ के लिये चला देते हैं। (७७)

[३००]

विश्व के कल्याण में अपना कल्याण है। (७८)